VOL- IX | ISSUE- III | MARCH | 2022 | PEER REVIEW e-JOURNAL | IMPACT FACTOR 7.331 | ISSN 2349-638x

भारतीय शास्त्रीय संगीत की शिक्षा एवं समाधान

डॉ. प्राची सुभाष हलगांवकर
श्रीगणेश कला महाविद्यालय
शिवणी—कुंभारी ता.जि.अकोला

प्रस्तावना : —

'शिक्षा' ज्ञान, विद्या अभ्यास व अनुभव से युक्त वह प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से योग्य या अयोग्य व्यक्ति की वृत्तियों का परिश्कार किया जा सकता है। शिक्षा का सामाजिक, नैतिक तथा बौद्धिक दृष्टि से व्यापक अर्थ है। सम्यक् शिक्षा समाज, संस्कृति, देश तथा विश्व के नैतिक उत्थान का कारण बनती है। शैक्षणिक प्रक्रिया मानव में व्यक्तित्व का संतुलन बनाए रखने की योग्यता उत्पन्न कर उसे सभ्य, सुसंस्कृत व सुयेग्य होने का अधिकार प्रदान करती है। मनुष्य के आन्तरिक व बाह्य विकास—हेतु शिक्षा का महत्त्व अत्यधिक है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत की चर्चा करने से पूर्व संगीत की सारगर्भिता पर प्रकाश डालना आवश्यक है। आध्यात्मिक, दार्शनिक व सौन्दर्य—शास्त्रीय पक्ष इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। संगीत का स्थान ललित कलाओं में अग्रगण्य है। ललित कला का अर्थ एवं उद्देश्य मनुष्य के मन को आकृष्ट करना है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत की शिक्षा का अर्थ स्वर—ताल—युक्त धुनों या रागों को सिखाना—मात्र नहीं है, वरन सारगर्भित रूप में संगीत के साधना—पक्ष में विद्यार्थी की श्रद्धा व आस्था उत्पन्न करना और संगीत के प्रयोगों के प्रति विशाल दृष्टिकोण अपनाते हुए उसके लालित्य एवं रस—तत्त्व के प्रति सचेत रहना तथा संगीत के विकास के लिए प्रयत्नशील रहना है।

संगीत का आधारभूत तत्त्व 'नाद' हे, जो सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त तथा सृष्टि का कारण है। 'योगशिखोपनिशद्' में नादानुसंधान को सबसे बड़ी पूजा कहा गया है। मोटे तौर पर हम 'शास्त्रीय संगीत' उसे कहते हैं, जो शास्त्र—नियमानुसार प्रस्तुत किया जाए। हम यह भी कह सकते हैं कि शास्त्रीय संगीत ने विभिन्न राग—रागिनियों से सुसज्जित पोषक पहन रखी है। वह स्वर—पधान है। वर्तमान में शास्त्रीय संगीत स्वामी हरिदास, तानसेन, बैजू बाबरा आदि महान् संगीतकारों की विरासत व भग्नावषेश के रूप में है। वह घराने की शक्ल अख़्तियार करके विश्रृंखल हो गया है। शास्त्रीय संगीत को 'मार्ग संगीत्' भी कहा गया है। किसी भी कला या विद्या के शास्त्र का सृजन तभी सम्भव है, जबकि वह अस्तित्व में आकर विकसित हो। शास्त्रीय संगीत मनुष्य द्वारा निर्मित सिद्धान्तों (शास्त्र) की बंदिश में रहता है। वह गायन, वादन व नृत्य के शास्त्र पर आधारित है, अत: हम कह सकते हैं कि वह शास्त्र—प्रधान है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत का सम्बन्ध संगीत में निहित आन्तरिक व बाह्य सौन्दर्य, दोनों से है। उसका सौन्दर्य चित्र में निहित सौन्दर्य की भाँति स्पष्ट रूप से द्रष्टव्य न होकर केवल श्रव्यात्क रूप में ही अनुभव करने—योग्य होता है। वस्तुत: संगीत—कला में रसाभिव्यक्ति व रसास्वादन की प्रक्रिया कलाकार व श्रोता के बीच एक बहती हुई नदी के समान होती है, और संगीत में स्वरात्मकता व लयात्मकता—ये

दोनों ही तत्त्व संगीत व सौन्दर्य के सम्बन्ध को अविछिन्न बनाने के मुख्य आधार माने गए हैं।

भारत में वैदिक काल से ही संगीत–शिक्षा गुरू–मुख से दी जाती थी। गुरूकुल में रहकर, गुरू के मुख से नि:सृत वाणी को कठोर अनुशासन के साथ नियमित व संयत जीवन व्यतीत करते हुए अनवरत रूप से ग्रहण करते जाना ही तब शिक्षा का एकमात्र साधन था। भारतीय संगीत की दृष्टि से देखें तो यह ऐसी कला है, जो मस्तिष्क द्वारा कम और हृदय द्वारा अधिक ग्राह्य है। अत: मौखिक रूप से प्राप्त अभ्यास व साधना द्वारा परिपोषित यह विद्या योग के समान ही साधन व साध्य बनकर संगीत को आध्यात्मिक स्तर पर पहुँचा देती है।

वैदिक काल में गुरू–शिष्य के सम्बन्धों में आदर, श्रध्दा व प्रेम की भावना निहित रहती थी, जो उनके नैकट्य के कारण दृढ़तर हो जाती थी। परन्तु वर्तमान समय में, बड़े–बड़े शहरों व अन्य स्थानों पर संगीत–शिक्षा हेतु दूरस्थ केन्द्र बन गए हैं, जहाँ विद्यार्थी को केवल कुछ घण्टों के लिए गुरू का साहचर्य प्राप्त होता है। अत: विद्यार्थी को केवल कुछ घण्टों के लिए गुरू का साहचर्य प्राप्त होता है। अत: विद्यार्थी में प्रेम व श्रद्धा की भावना उतनही प्रबल नहीं हो पाती और न वह वैसा आदर्श जीवन ही व्यतीत कर पाता है। आज का विद्यार्थी तो शास्त्रीय संगीत की शिक्षा घर में अपने माता–पिता के पास रहकर, अपनी सम्पूर्ण आवश्यकताओं के अनुसार सुख–सुविधाओं एवं मनोरंजन की सामग्री का लाभ उठाते हुए प्राप्त करना चाहता है। उसके लिए तो वह एक सामान्य उपलब्धि–मात्र है।

भारत में अँग्रेज़ों के आगमन से सामाजिक परिवेश में परिवर्तन के साथ ही शास्त्रीय संगीत के बाहरी स्वरूप में भी अन्तर आया। किन्तु वह घरानों के माध्यम से परिपोषित होता रहा। प्राचीन काल से चली आ रही गुरू–शिष्य–परम्परा में गुरू व शिष्य के बीच माँ–बेटी व पिता–पुत्र जैसे स्नेह, श्रद्धा व विश्वास का सम्बन्ध होता था। किसी प्रभावशाली गुरू की आवाज़ की प्रकृति तथा गायकी की विशेषताओं से युक्त गायन–शैली को उस गुरू के शिष्य–प्रशिष्य, घराने के प्रति श्रद्धा के कारण ज्यों–का–त्यों गुरू की समस्त विशेषताओं के साथ आत्मसात् करते थे।

आजकल गुरू–शिष्य–परम्परा का प्रचलन काफ़ी कम हो गया है और संगीत की शिक्षा अधिकांशत: विद्यालयों, महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों के माध्यम से दी जा रही है, अत: वह सर्वजन–सुलभ है। इस समय ऐसी अनेक संस्थाएँ हैं, जो भारतीय शास्त्रीय संगीत की शिक्षा बृहत् स्तर पर दे रही हैं। कुछ प्रमुख संस्थाओं के नाम इस प्रकार हैं–

१. प्रयाग संगीत समिति (इलाहाबाद), २. भातखंडे संगीत कॉलेज (लखनऊ), ३. गान्धर्व महाविद्यालय (पुणे), ४. स्कूल ऑफ़ इंडियन म्यूज़िक (मुंबई), ५. म्यूज़िक कॉलेज (कोलकाता), ६. स्कुल ऑफ इंडियन म्यूज़िक (बड़ौदा), ७. शंकर संगीत विद्यालय (ग्वालियर), और ८. माधव संगीत विद्यालय (ग्वालियर)। परन्तु इस वर्तमान शिक्षा से भारतीय शास्त्रीय संगीत के आन्तरिक तत्त्वों को उभरने का अवसर नहीं मिल पा रहा है। उदाहरणार्थ, उसमें स्वर–तानों एवं साधना–पक्ष को प्रबल बनाने–हेतु अतिरिक्त समय का प्रावधान नहीं है।

लेकिन ऐसा क्यों है? इसका कारण क्या है? देखना यह है कि क्या आज की संगीत–शिक्षा का उद्देश्य मानव–जीवन में रस का संचार करना और मानसिक रूप से उन्हें उत्कृष्ट बनाना है! यहीं एक बात यह भी है कि आज अधिकांश व्यक्ति संगीत को व्यावसायिक रूप में ग्रहण करते हुए अपना जीवन–निर्वाह–मात्र कर रहे हैं, जबकि वास्तव में तो जीवन को कलात्मक, सुरूचिपूर्ण एवं

सुसंस्कृत बनाने के लिए जनसाधारण में शिक्षा के प्रति प्रेम व आत्म–चेतना जाग्रत् करना ही संगीत–शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिए। क्योंकि तभी उसके माध्यम से समाज का मानसिक व नैतिक उत्थान सम्भव है। सम्भवत: रेडियो, टेलीविज़न आदि प्रचार–माध्यमों का बोलबाला होने के कारण संगीत में चिन्तन का भाव आज कम हो गया है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत की दूरस्थ शिक्षा के क्षेत्र में आज निम्नांकित अवरोध हमारे सामने हैं, जिनके कारण भविष्य की सम्भावनाओं में व्यवधान उत्पन्न हो सकता है–

१. नियमित पाठ्यक्रमों में, भारतीय शास्त्रीय संगीत के साथ लोक–संगीत, सरल संगीत व समूह–संगीत के तत्त्वों का मिश्रण हो जाना।
२. पाठ्यक्रम में ऐतिहासिक तथ्यों की क्रमिक प्रविष्टि होना।
३. शिक्षण–साथ ष्यामपट, चार्ट, मंच–प्रदर्शन, वैयक्तिक या सामूहिक अभ्यास–पद्धति का प्रयोग कम होना।
४. कंठ–साधना–हेतु उचित शिक्षण–प्रक्रिया का समावेश न होना।

–यद्यपि आधुनिक समय में भारतीय शास्त्रीय संगीत की शिक्षा का प्रचार–प्रसार तीव्र गति से हो रहा है, जिसका श्रेय प्रतिष्ठित संगीत–संस्थाओं के कार्यकर्ताओं, अध्यापकों, सम्बन्धित अधिकारी–वर्ग, रेडियो व टेलीविज़न–विभाग, प्रशासनिक संगठनों एवं वैज्ञानिक उपकरणों के निर्माताओं को जाता है।

वर्तमान में भारतीय शास्त्रीय संगीत अलग–अलग स्थानों पर व्यावसायिक रूप में पनप रहा है। उदाहरणार्थ– पहले गायक झूमरा, आड़ा चौताल, तिलवाड़ा आदि तालों में विलम्बित (बड़े) ख्याल और रूपक, झप ताल व तीनताल आदि तालों में मध्य एवं द्रुत लय के (छोटे) ख्याल गाया करते थे, परन्तु आज सरल–ग्राह्यता की प्रवृत्ति के कारण अधिकांशत: विलम्बित ख्याल एकताल में और द्रुत ख्याल तीनताल में गाए जाते हैं। यदि बाह्य सौन्दर्य की दृष्टि से देखें तो पहले की गायकी में षवुकता थी। राग–वैचित्र्य, स्वर–प्रयोग में चमत्कार, तान की तीव्रता, लयात्मकता आदि पर अधिक बल दिए जाने के कारण आन्तरिक पक्ष में कुछ हलकापन आ गया था। सम्भवत: माइक के अभाव में गायकों को अधिक–से–अधिक दूर तक सुनाई दे सकने वाली दमदार आवाज़ तैयार करनी पड़ती थी!

समाधान

आने वाले समय में भारतीय शास्त्रीय संगीत के विकास के लिए सुयाग्य शिक्षण, षोधकार्य तथा मनोवैज्ञानिक व नवीन क्रियात्मक प्रयोगो की आवश्यकता है। साथ ही जनसामान्य को इसके उच्चतम ध्येय की प्राप्ति से अवगत कराना होगा तथा सम्पूर्ण समाज को इसके माध्यम से अलौकिक आनन्द की प्राप्ति का अनुभव करने की प्रेरणा भी देनी होगी। वस्तुत: भारतीय शास्त्रीय संगीत एक गुरूमुखी विद्या है। यह कला गुरू–शिष्य की शरण में रहकर ही उन्नति करती है।

संगीत–ज्ञान के अभाव में, सुन्दर शरीर, मधुर कंठ व चित्त की एकाग्रता होने पर भी अभ्यास फलीभूत होता है–यह भी एक तयि है। यदि शास्त्रीय संगीत के आदर्श की कल्पना की जाए तो दो प्रमुख तत्त्वों का होना आधुनिक सन्दर्भ में अति आवश्यक प्रतीत होता है– १. सौन्दर्य–अभिव्यक्ति (Aesthetic Expression), और २. भावात्मक अभिव्यक्ति (Emotional Effect) इनके पुर्ति के लिए समस्त क्रियात्मक प्रयोगों, संगीतात्मक उद्देश्य तथा शैक्षणिक प्रयोगों को उचित दिशा प्रदान करना होगा। समन्वित रूप से यह आवश्यक है कि कंठध्वनि से लगाव, सुन्दर स्पष्ट स्वर–प्रयोग और संगीत–अलंकरणों के साथ ही गेय विधाओं की सीमाओं को भी ध्यान में रखा जाए; कल्पना व

प्रतिभा का प्रयोग करते हुए राग का बर्ताव अनुचित न हो; माइक की सुविधा होने पर भी कंठध्वनि शास्त्रीय संगीत के गुण—धर्म के अनुकूल हो; तथा शब्दों के प्रयोग, साहित्य की श्रेष्ठता, स्पष्ट उच्चारण तथा रागाभिव्यक्ति के प्रमुख केन्द्रों को ध्यान में रखा जाए।

गायन में परम्परागत संगीत की सुगन्ध विद्यमान रहने से संगीत की गरिमा में वृद्धि होती है। यह भी आवश्यक है कि प्रमुखत: किसी एक गुरू से शिक्षा प्राप्त कर गायकी में निखार उत्पन्न किया जाए। इस सबके साथ ही उदार दृष्टि से संगीत का श्रवण कर, ग्रहण करने—योग्य सामग्री को आत्मसात् करने का प्रयास भी करना चाहिए।

इस प्रकार यदि गुरूकुलीरन शिक्षण—व्यवस्था, घरानागत शिक्षण—व्यवस्था एवं संस्थागत व विश्वविद्यालयीन शिक्षण—व्यवस्था के सभी गुणों को सम्मिलित कर उक्त समस्त बिन्दुओं पर ध्यान दिया जाए तो भारतीय शास्त्रीय संगीत निश्चित रूप से एक आदर्श स्थापित कर सकेगा—ऐसा मेा विश्वास है।

संदर्भ :—

१. राग विशारद
२. क्रमिक पुस्तक मालिका
३. संगीत शास्त्र
४. संगीत चिंतामणी
५. विश्व संगीत अंक

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal
ISSN 2349-638X
www aiirjournal.com